International Journal of Applied Research 2015; 1(7): 29-31

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(7): 29-31
www.allresearchjournal.com
Received: 13-04-2015
Accepted: 12-05-2015

राकेष रंजन
पी–एच0डी0 शोध छात्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी (वाराणसी)

कमल किषोर
पी–एच0डी0 शोध छात्र देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

Correspondence:
राकेष रंजन
पी–एच0डी0 शोध छात्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी (वाराणसी)

श्रीमद्भगवदगीता में पुनर्जन्म की अवधारणा

राकेष रंजन, कमल किषोर

शोध सारांष
श्रीमद्भगवदगीता महा भारत का एक अंग है। गीता में वैदिक एवम् उपनिषदिक तथ्यों को बड़े ही सरल एवम् प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसलिए यह कहा गया कि वेदों का सार उपनिषद है एवम् उपनिषदों का सार गीता है। यही वजह है कि मानव जीवन की कोई भी ऐसी दार्शनिक समस्या नहीं है जिस पर गीता में समयानुकूल समाधान न प्रस्तुत किया गया हो।
पुनर्जन्म भी मानवीय जीवन से जुड़ी उन्हीं दार्शनिक समस्याओं में से एक है जिस पर चिन्तन वैदिक काल से ही हमारे ऋषियों, महर्षियों द्वारा किया गया है। वेदों में प्रथम वेद ऋग्वेद में ऋत सिद्धान्त पर विचार किया गया है। 'ऋत' सिद्धान्त वेदों का एक प्रमुख सिद्धान्त है जिसका अर्थ है व्यवस्था या नियम। यह वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि संचालित है। इस 'ऋत सिद्धान्त के अन्तर्गत यह बताया गया है कि मनुष्य मात्र के लिए क्या उचित है क्या अनुचित है, क्या ग्रह्य क्या अग्राह्य है।
वेदों की यही 'ऋत सिद्धान्त की अवधारणा क्रमशः कर्म सिद्धान्त, कर्मफल सिद्धान्त, आत्मा की अमरता का सिद्धान्त एवम् पुनर्जन्म सिद्धान्त के रूप में विकसित हुआ। पुनर्जन्म की यही अवधारणा वेदों–उपनिषदों से होते हुए गीता में पूर्ण विकसित रूप में देखने को मिलती है। यही कारण है कि इस शोध के अन्तर्गत श्रीमद्भगवदगीता में वर्णित पुनर्जन्म की अवधारणा पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

मुख्य बिन्दु – 'ऋत, गीता, कर्म–कर्मफल, पुनर्जन्म

प्रस्तावना – मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। इसी गुण के कारण वह पुशुओं से भिन्न समझाा जाता है। अरस्तू ने मनुष्य को सामाजिक एवम् विवेकशील प्राणी कहकर उसके स्वरूप को प्रकाशित किया है। विवेक अर्थात्! बुद्धि की प्रधानता रहने के कारण मानव आदि काल से ही अपने अस्तित्व से जुड़ी हर समस्या पर दार्शनिक चिन्तन करता आया है। पुनर्जन्म भी उन्हीं दार्शनिक पहलुओं में से एक है। पुनर्जन्म से तात्पर्य है देहावसान होने के बाद पुनः शरीर धारण करना अर्थात् मरने के बाद पुनः जन्म लेना। अब प्रश्न यह उठते हैं कि पुनर्जन्म होता है या नहीं यदि होता है तो क्यों होता है और इसका क्या प्रयोजन है आदि–आदि। इन प्रश्नों पर प्रथम दार्शनिक चिन्तन हमें विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में ऋत सिद्धान्त के रूप में मिलता है। वेदों का 'ऋत' सिद्धान्त ही वह व्यवस्था या नियम का सिद्धान्त है जिससे सम्पूर्ण सृष्टि संचालित है। इसी ऋत सिद्धान्त से अनुभासित होकर प्रतिदिन दिवाकर 'दिवाकर' बन जाता है, निशाकर 'निशाकर' बनता रहता है। तारों की चमक, फूलों की महक इसी ऋत सिद्धान्त का नियमन है। यहॉ तक कि वायु का सतत् संचरण और ऋतुओं का परिवर्तन भी इसी ऋत सिद्धान्त का नियन्त्रण है। इसी दिन –रात्रि के नियमित परिवर्तन को ऋतुओं की नियमित गतिशीलता को ऋत कहते हैं। संसार के कण–कण में प्रतिपल परिवर्तन में जो व्यवस्था परिलक्षित होती है उसी का नाम ही ऋत है।[1]
देव, दानव, मानव सभी इस व्यवस्था के आधीन हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत इसी से संचालित है। इसके संरक्षक वरूण देव हैं जिनको नैतिक व्यवस्था का नियामक रूप अत्यन्त प्रभावशाली है। दण्ड एवम् क्षमा का उनका नैतिक आधार सुदृढ़ है। ऋत सिद्धान्त की यही अवधारणा उत्तरवर्ती दार्शनिक चिन्तन में कर्म एवम् कर्मफल सिद्धान्त, आत्मा की अमरता का सिद्धान्त एवम् अन्ततः पुनर्जन्म का आधार बना।[2] वेदों, उपनिषदों से विकसित होते हुए श्रीमद्भगवदगीता में स्पष्ट दृष्टिगत होता है। इस तरह ऋत सिद्धान्त का विकसित रूप कर्म सिद्धान्त एवम् कर्म सिद्धान्त का विकसित रूप ही पुनर्जन्म सिद्धान्त के रूप में प्रतिफलित होता है।[3]

अथो खलवाहुः काममय एवायं पुरूष इति, स यथाकामो भवति।
तत्कतुर्भवति, यत्कतुर्भवतितत् कर्म करूते, तद्भिसम्पद्यते।।

अर्थात्! उपनिषदों की विचार धारा में कर्म की प्रतिष्ठा है। पुरूष कामनामय है, पुरूष की कामना के अनुसार ही उसका संकल्प होता है तथा संकल्पानुसार ही कर्म करता है।[4]

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषद्यत समाः

अर्थात्! कर्म सिद्धान्त के अनुसार जो मनुष्य जैसा कर्म करता है वह वैसा ही बन जाता है अर्थात् फल प्राप्ति हेतु तदनुसार विभिन्न योनियों में जन्म ग्रहण करता है। इस तरह गुण कर्मों के फल भोग हेतु उच्चतर एवम् अशुभ कर्मों के फल भोग हेतु निम्नतर योनियों में जन्म लेना पड़ता है यही कारण है कि उपनिषद सदैव सत्कर्मों को करते हुए जीवेम शरदः शतम की प्रेरणा देते हैं।[5]

इस तरह अपने ही शुभाशुभ कर्मों से मनुष्य स्वर्ग नरकगामी बनता है उच्चतर–निम्नतर योनियों में पुनः–पुनः जन्म लेता है जिसका विकसित स्वरूप हमें श्रीमद्भगवदगीता में देखने को मिलता है। श्रीमद्भगवदगीता की पुनर्जन्म की इस अवधारणा पर इस प्रकार प्रकाश डाला जा सकता है।

पुनर्जन्म की अवधारणा –

पुनज्रन्म का अर्थ – पुनर्जन्म का सामान्य अर्थ है कि शरीर की मृत्यु के साथ ही शरीरगत आत्मा नहीं मरती है वरन् वह आत्मा इस देह से प्राप्त संस्कारों के आधार पर दूसरी देह धारण करती है इसे ही पुनर्जन्म कहा जाता है। अर्थात् मृत्यु के उपरान्त जब पंचतत्व अपने–अपने में विलीन हो जाते हैं तब जीवात्मा शेष रह जाती है और कर्मसंस्कारों के अनुकूल दूसरी देह धारणा करती है जोकि पुनर्जन्म कहलाता है।[6]

पुनर्जन्म का स्वरूप – श्रीमद्भगवदगीता के अनुसार 'पुनर्जन्म' वह प्रक्रिया है जिसमें आत्मा एक शरीर के जीर्ण हो जाने पर दूसरा शरीर उसी प्रकार धारण कर लेती है जिस प्रकार मानव अपने जीर्ण वस्त्रों को नए वस्त्रों में बदल लेता है।[7] अर्थात् पुनर्जन्म में आत्मा एक शरीर को त्यागकर दूसरे शरीर में प्रवेश करती है जिसके कारण परिवर्तन सिर्फ शरीर का होता है आत्मा का नहीं। पुनर्जन्म के इस स्वरूप का समर्थन वेदों में भी मिलता है। अथर्ववेदानुसार ''आत्मा के पूर्व जन्म कृत पाप–पुण्य भोग हेतु उसी प्रकार के अच्छे–बुरे शरीर अर्थात् नया शरीर मिलता है।[8]

पुनर्जन्म का आधार – श्रीमद्भगवदगीता की पुनर्जन्म की अवधारणा का आधार कर्म है क्योंकि गीता की यह प्रबल मान्यता है कि जीव ईश्वर का अंश है।[9] ईश्वर का अंश होने के नाते यह अमर, अविनाशी एवम् अजन्मा है।[10] इस आत्मा को शस्त्र से काटा नहीं जा सकता और न ही अग्नि, जल या वायु से ही प्रभावित किया जा सकता है।[11]

यह आत्मा नित्य सर्वव्यापी, स्थिर, अचल एवम् सनातन है।[12] आत्मा शास्वत है समस्त कर्मों की कर्ता एवम् भोक्ता है इसलिए आत्मा की अमरता, कर्मफल भोग हेतु पुनर्जन्म की धारणा को बल मिलता है।[13] इस प्रकार गीता की यह मान्यता है कि मानव जीवन में कर्मानुसार जन्म प्राप्त होता है और एक कर्म अवधि समाप्त होने पर उसे मरना भी पड़ता है ताकि कर्मफल भोग हेतु पुनर्जन्म ग्रहण कर सके।[14]

पनुर्जन्म की अपरिहार्य स्थिति को स्पष्ट करते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि पार्थ! जिसने जन्म लिया उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है, और जो मर गया उसका जन्म लेना भी अनिवार्य है फिर इस अपरिवर्तनशील कर्म के सन्दर्भ में तुम्हारा सोचना उचित नहीं है।[16]

गीता एक प्राचीनतम धार्मिक ग्रन्थ है जिसमें पुनर्जन्म की इस अवधारणा की व्याख्या बड़े ही सुन्दर एवम् प्रभावशाली ढंग से की गई है। जीवात्मा का नया शरीर धारण करना मनुष्य के नए वस्त्र करने के समान मानते हुए कहा गया कि ''जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार देही अर्थात् शरीर का स्वामी आत्मा, पुराने शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण करती है।[17] गीता की पुनर्जन्म की इस अवधारण का वर्णन हमारे वेदों एवम् उपनिषदों में भी मिलता है। उपनिषदों की मान्यता है कि स्वर्णकार जिस प्रकार स्वर्णपत्र पर एक मूर्ति की रचना करता है और उसके पुराने हो जाने पर उसी स्वर्णपत्र को गलाकर दूसरी मूर्ति की रचना कर देता है, उसी प्रकार आत्मा एक देह के जीर्ण हो जाने पर दूसरी देह धारण कर लेती है। पुनर्जन्म का यही आधार है।[18]

गीता की इस अवधारणा का समर्थन योग के सर्वमान्य ग्रन्थ पातंजल योग सूत्र में भी मिलता है। योग दर्शन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'क्लेश' का मूल कर्म–संस्कारों का समुदाय जब तक विद्यमान है तब तक दृष्ट अर्थात् वर्तमान तथा अदृष्ट अर्थात् भविष्य में होने वाले जन्मों में भोगा जाने वाला है।[19] जन्म–पुनर्जन्म की इस अवधारणा को और स्पष्ट करते हुए कहा गया कि क्लेश रूपी मूल विद्यमान रहने तक उसके परिणाम स्वरूप जन्म आयु और भोग होता ही रहता है।[20] यह जन्म – आयु एवम् भोग पुण्य कर्म एवम् पाप कर्म दोनों के परिणाम होने के कारण योग दर्शन के अनुसार जन्म–आयु एवम् भोग हर्ष एवम् शोक दोनों के कारण होते हैं।[21] पूर्णत्व की ओर ले जाने वाले कर्म पूण्यकर्म एवम् पतन की ओर ले जाने वाले कर्म पाप कर्म हैं।[22] पुण्यकर्म अक्लिष्ट वृत्ति से संचालित होने के कारण जन्म–आयु एवम् भोगों में हर्ष प्रदान करते हैं वहीं पापकर्म क्लिष्ट वृत्ति से संचालित होने के कारण जन्म–आयु एवम् भोगों में शोक प्रदान करते हैं।[23]

पुनर्जन्म का उद्देष्य – अब प्रश्न यह उठता है कि आत्मा का पुनर्जन्म क्यों होता है। क्या यह क्रम निरन्तर कायम रहता है। पुनर्जन्म के सन्दर्भ में गीता की यह स्पष्ट अवधारणा है कि मोक्ष अर्थात् परम पद की प्राप्ति से पहले पुनर्जन्म तो होता ही रहता है। अपूर्णता के कारण जन्म का मृत्यु में और मृत्यु का जन्म में परिणत होना आवश्यक है।[24] गीता के अनुसार जन्म मृत्यु का यह चक्र ठीक उसी ढंग से चलता रहता है जिस प्रकार शैशवावस्था, प्रौढ़ावस्था एवम् वृद्धावस्था यह सभी अवस्थाएं मनुष्य शरीर में आती रहती हैं।[25] इस प्रकार गीता में पुनर्जन्म के एक ध्रुव सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है गीता के अनुसार आत्मा का पुनर्जन्म मोक्ष प्राप्ति के लिए मानते हुए मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है। क्योंकि गीताकार के अनुसार अपवनी पूर्ण अभिव्यक्ति हेतु जन्म–जन्मान्तर के प्रयासों के बाद जीवात्मा विकास की पूर्णता, परम एकत्व मोक्ष के रूप में प्राप्त करती हैं। अनके जन्मों से अन्तःकरण की शुद्धि रूप सिद्धि को प्राप्त हुआ योगी परम गति को प्राप्त होता है।[26]

वैदिक दर्शन ने भी इसे मानव जीवन का परम लक्ष्य कहा है। मुक्ति वह अवस्था है जिसमें मनुष्य अपनी सब वासनाओं का त्याग कर पूर्णकाम हो जाता है। सब प्रकार के कष्टों से दूर विशुद्ध दिव्य आनन्द के महा समुद्र में हिलोरें लेने लगता है। इस मुक्ति के सुख का भोग इन्द्रियों द्वारा नहीं होता वरन् आत्मा अपनी शक्तियों के सहारे उस परम आनन्द कर भोग करती है।[27] स्पष्टतः गीता के मतानुसार मोक्ष एक ऐसी अवस्था है जिसकी प्राप्ति आत्मा के एक ही जन्म के कर्मों से प्राप्त नहीं होती, जिसके कारण जीवात्मा अर्थात् मनुष्य एक जन्म में ही पूर्ण सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है। मोक्ष जीवात्मा का परम लक्ष्य है इसलिए जबतक मोक्ष प्राप्त नहीं हो जाता तब तक जीवात्मा को बार–बार पुनर्जन्म लेना पड़ता है। गीता में यहॉ तक कहा गया है कि जब–जब धर्म की हानि होती है अधर्म बढ़ता है तब–तब धर्म की रक्षा एवम् दुष्टों के विनाश हेतु ईश्वर को भी पुनः पुनः पुनर्जन्म (अवतार) लेना पड़ता है।[28] परन्तु अन्तर यह होता है कि मनुष्य के समान ईश्वरीय पुनर्जन्म (अवतार) साामन्य नहीं होते बल्कि दिव्य होते हैं। क्योंकि मनुष्य अपने पुनर्जन्म के ज्ञान से अनभिज्ञ रहता है जबकि ईश्वर को पूर्व जन्मो की स्थिति का ज्ञान रहता है।[29] सामान्य मनुष्य

प्रकृति के आधीन होकर पुनर्जन्म लेता है जबकि ईश्वर अजन्मा होकर भी अपनी प्रकृति को आधीन करके योगमाया से प्रकट होता है।[30]

निष्कर्ष – अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि गीता की पुनर्जन्म की अवधारणा पूर्णतः तर्कसंगत एवं दार्शनिक है। गीता पुनर्जन्म में आत्मा के देह परिवर्तन को वस्त्र परिवर्तन के समान मानते हुए पुनर्जन्म के स्वरूप को स्पष्ट करती है। कर्म–कर्मफल सिद्धान्त को पुनर्जन्म का आधार मानते हुए गीता अपनी पुनर्जन्म की अवधारणाओं को सुदृढ़ एवम् तर्कसंगत आधार प्रदान करती है। इसके साथ ही जीवात्मा का उद्देश्य पूर्णतः परम गति, मोक्ष आदि को स्पष्ट करते हुए पुनर्जन्म के उद्देश्य को भी सुस्पष्ट करती है। इस तथ्य का समर्थन वेदों, उपनिषदों द्वारा भी किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोयन्दका जयदयाल – 'श्रीमद्भगवदगीता', गीताप्रेस गोरखपुर 273005, 2012
2. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद – भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोती लाल बनारसी दास जवाहर नगर, दिल्ली 110607, 2012
3. मिश्र, जगदीश चन्द्र – 'भारतीय दर्शन', चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, 37/117 गोपाल मन्दिर लेन वाराणसी 221001, 2008
4. स्वामी अड़गड़ानन्द – 'योग दर्शन', श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द आश्रम, ट्रस्ट मुम्बई–07
5. श्रीमाली, डॉ0 मन्दाकिनी – 'प्रज्ञापुरूष का समग्र दर्शन', अखण्ड ज्योंति संस्थान मथुरा –03, 2001
6. खण्डेलवाल, डॉ0 ऊषा – 'आध्यात्मिक मान्याताओं का वैज्ञानिक प्रतिपादन', शान्तिकुँन्ज हरिद्वार 249411, 2000
7. आचार्य, श्रीराम शर्मा – 'पुनर्जन्म एक ध्रुव सत्य', युगनिर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा 03, 2007
8. आचार्य, श्रीराम शर्मा – 'गहना कर्मणोंगति', युगनिर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा 03, 2004
9. सरस्वती, स्वामी शिवानन्द –'कर्मयोग साधना', दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द नगर, टिहरी गढ़वाल, उत्तरांचल 249192, 2001
10. लाल, बसंत कुमार – 'समकालीन भारतीय दर्शन', मोती लाल बनारसी दास, जवाहर नगर दिल्ली 07, 2006
11. आचार्य, श्रीराम शर्मा – 'जीवन भाग्य नहीं कर्मप्रधान है', युगनिर्माण प्रेस मथुरा 03, 1994
12. कल्याण योगांक – दसवें वर्ष का विशेषांक, गीता प्रेस गोरखपुर, 2012

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्र, जगदीश चन्द्र भारतीय दर्शन, पृ0 52
2. मिश्र, जगदीश चन्द्र भारतीय दर्शन, पृ0 53
3. मिश्र, जगदीश चन्द्र भारतीय दर्शन, पृ0 86
4. बृहदाराण्यकोपनिषद – 4/4/5
5. इशावाश्योपनिषद – 2
6. ऋग्वेद – 10/16/5
7. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 2/22
8. अथर्ववेद – 5/9/2
9. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 15/7
10. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 2/20
11. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 2/13
12. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 2/20
13. सिंह, हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा पृ0 75
14. मिश्र, जगदीश चन्द्र भारतीय दर्शन पृ0 165
15. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 2/27
16. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 2/22
17. बृहदाराण्यकोपनिष्द – 3/2/13
18. पातंजल योग सूत्र – 2/12
19. पातंजल योग सूत्र – 2/13
20. पातंजल योग सूत्र – 2/14
21. स्वामी अड़गड़ानन्द, महर्षि पतंजलिकृत योग दर्शन पृ0 40
22. स्वामी अड़गड़ानन्द, महर्षि पतंजलिकृत योग दर्शन पृ0 40
23. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 2/27
24. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 2/13
25. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 6/45
26. ऋग्वेद 1/164/21
27. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 4/7
28. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 4/9
29. श्रीमदभगवद्गीता गीता, 6/6